महाकवि भासकृत

स्वप्नवासवदत्ता

नाटक

अनुवादक

देवपुरस्कार विजेता

श्री हरदयालु सिंह

२००३

हिन्दी साहित्य सम्मेलन,

प्रयाग

प्रकाशकीय

संस्कृत के श्रेष्ठ ग्रन्थों तथा पुराणों के हिन्दी अनु
सम्मेलन का ध्यान बहुत पहले से ही रहा है। इसके लि
वर्षों से एक स्थायी अनुवादक भी रखे गए हैं, जिन्हो
तथा वायुपुराण का अनुवाद समाप्त कर दिया है। सुप्रसि
के शिशुपालवध तथा मम्मट के काव्यप्रकाश का अनुवाद
द्वारा प्रकाशित हो चुका है। संस्कृत के श्रेष्ठ नाटकों के
योजना भी सम्मेलन की दृष्टि में थी! श्री हरदया
अनूदित संस्कृत के सुप्रसिद्ध नाटककार भास के कर्णभा
मध्यमव्यायोग, स्वप्नवासवदत्ता और प्रतिज्ञा यौगन्धरा
वाद सम्मेलन उसी दृष्टि से प्रकाशित कर रहा है। आ
पाठकों को वह पसन्द आएँगे।

श्रीमान् बड़ौदा नरेश स्वर्गीय महाराजा सयाजीराव
बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच स
सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से
'सुलभ-साहित्य-माला' के प्रकाशन का कार्य कर रहा है।
अनेक सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रंथन हो
मुझे आशा है कि उनके समान ही श्रीभास के नाटकों के
का भी हिन्दी जगत् स्वागत करेगा।

साहित्य
सौर पौष २००३ हिन्दी साहि
प्रया

❀ श्री ❀

ाकवि भास प्रणीत

स्वप्न वासवदत्ता

का

अनुवाद

दी के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

क उदै समै की,
बर नील छटानि कौ धारन वारी।
सेवन सौं जिन मैं,
सिथिलाई बढ़ै, कबहूँ बलभारी॥
की किधौं अवतार ये,
पूरी रहैं रिधि सिद्धि सौं सारी।
बसंत सिंगार करैं,
रखवारी सदा बल-बाहु तुम्हारी॥१॥

नुभावों से कुछ निवेदन करता हूँ। अरे! मैं तो
हूँ, और इधर कुछ शब्द सा सुनाई पड़ता है।

(नेपथ्य में)

नुभावो! चलो! चलो!!

च्छा, समझ गया।

सेवक सकल, राजसुता संग आय।
ासिन कौ सबनि, बरबस रहे हटाय॥२॥

(प्रस्थान)

(स्थापना)

प्रथम अंक

(भट द्वय का प्रवेश)

दोनों भट—सज्जन महानुभावो ! चलो ! हटो !!

(परिव्राजकवेषी यौगन्धरायण, और अवन्तिकावेषिणी वासवदत्ता का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(कान लगाकर) अरे यहाँ से भी तो लोग हटाये जाते हैं। क्यों,

आश्रम मैं निवसैं सुख पाय,
संतोष करैं बन के फल खाई।
धारिकै बल्कल के परिधान,
बने रहैं मान के जोग सदाई।
छांड़िकै कौन बिनै-पथ कौ,
निज चंचल भाग पै दर्प दिखाई।
सासन है इहि भांति सौं कौन,
रह्यो तप भूमि कौ ग्राम बनाई ॥३॥

वासवदत्ता—आर्य। यह कौन निकाल रहा है ?

यौगन्धरायण—देवी ! यह वही होगा जो धर्म से विमुख है।

वासवदत्ता—आर्य ! यह नहीं कहती हूँ, क्या मैं भी हटाई जाऊँगी।

यौगन्धरायण—देवी ! अपरिचित दशा में तो देवताओं का भी अपमान हो जाता है।

वासवदत्ता—आर्य ! अध्वखेद इतना दुख नहीं देता जितना कि पराभव।

यौगन्धरायण—आपने इस देश का सुख अनुभव किया, और छोड़ भी दिया। अब चिन्ता का कौन सा प्रसंग है।

क्योंकि,

पहिले ही उदैन महीपत के संग,
जीवन के सुख भोगे इतै।

निज नाह बिजै सौं सबै हिय-साध
त्यौं पूजिहै द्यौस कछूक बिबै ॥
रथ चक्र के नेमि फिरै तर ऊपर,
ज्यों मग मैं चलिबे के हिबै ।
क्रम काल कौ लै, जग त्यों नर की,
फिरिबो करै भाग की रेखा निबै ॥४॥

दोनों भट—सज्जन महानुभाव ! चलो ! चलो !!

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—सम्भषक ! लोगों को इस प्रकार मत हटाओ । देखो,

जनि करावहु राज निंदा, परषु वचन सुनाय ।
इन तपोधन जनन कहँ, इहि भाँति सों निदराय ॥
नितहिं नगर-निवास के, परिभवनि सौं घबराय ।
त्यागि जग जंजाल कौ, ये बसत कानन आय ॥५॥

दोनों भट—आर्य ! जैसा आप कहें ।

(दोनों का प्रस्थान)

यौगन्धरायण—यह तो बड़े अच्छे आये । वत्से ! आओ इनके पास चलें ।

वासवदत्ता—आर्य ! बहुत अच्छा ।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) अजी ! लोगों को क्यों हटा रहे हो ?

कंचुकी—हे तपस्वी !

यौगन्धरायण—(स्वगत) यह तो बड़ा आदरास्पद सम्बोधन है परन्तु अपरिचित होने के कारण मन में जंचता नहीं ।

कंचुकी—सुनिये ! यह हमारे महाराज दर्शक की सहोदरा पद्मावती हैं । महाराज की माता महादेवी भी आज इसी आश्रम में निवास करती हैं । उनकी आज्ञा लेकर यह राजगृह को जायँगी । इसी लिये आज इन्होंने यहीं निवास करना निश्चय किया है । अतः आपलोग,

लीजै जथा रुचि या समै आपु,
इतै बनसों समिधानि की ढेरी ।

तीरथ - तोय तथा कुस - फूल,
रहे चहुँ ओर सुगन्धि बिखेरी ॥
भूपति की तनया यह धर्म—
प्रिया रुचि धर्म मैं राखै घनेरी।
पूजै नित तपसीनि की साध,
धरे हिय कानि सदा कुल केरी ॥६॥

यौगन्धरायण—(स्वगत) अच्छा। यह वही मगधराज की कन्या पद्मावती है जिसके सम्बन्ध में पुष्पक भद्रादि ज्योतिर्विदों ने कह रक्खा है कि यही हमारे महराज की रानी होगी। तभी तो,

उपजत है संकल्प सौं, कहूँ द्वेष कहुँ मान।
नृप-दारा अभिलाष सौं, या मैं प्रीति महान ॥७॥

वासवदत्ता—(स्वगत) राजपुत्री का नाम सुनकर मेरा भी इसके प्रति सहोदरा सुलभ स्नेह हुआ जाता है।

(चेटी सहित सपरिकर पद्मावती का प्रवेश)

चेटी—राजनन्दिनी ! आइये, यही आश्रम है, प्रवेश कीजिये।

(बैठी हुई तपस्विनी का प्रवेश)

तापसी—स्वागत है राजनन्दिनी !

वासवदत्ता—(स्वगत) यह वही राजकुमारी है ? इसकी आकृति भी इसके अनुरूप ही है।

पद्मावती—आर्ये ! अभिवादन करती हूँ ?

तापसी—दीर्घायु हो पुत्री ! भीतर आओ। आश्रम तो अभ्यागतों का अपना घर ही है।

पद्मावती—आर्ये ! मैं भी यही मानती हूँ। आपके कृपा पूर्ण वचनों से मैं अनुगृहीत हुई।

वासवदत्ता—(स्वगत) इसका रूप ही मनोहर नहीं है, इसकी वाणी भी बड़ी मधुर है।

तापसी—कल्याणि ! क्या राजभगिनी के पाणिग्रहण के सम्बन्ध में कहीं बातचीत हुई है ?

चेटी—हाँ, उज्जैनी के राजा प्रद्योत ने अपने पुत्र से विवाह की बातचीत करने के लिये राजदूत भेजा है।

वासवदत्ता—(स्वगत) तब तो यह अपनी ही है।

तापसी—यह तो इसके अनुरूप ही है, दोनों ही राजवंश की परम प्रतिष्ठा सम्पन्न हैं।

पद्मावती—आर्ये ! क्या आपने मुनियों के दर्शन किये ? क्या वे हमें अनुगृहीत भी करेंगे ? तपस्वियों का यथेष्ट दान प्राप्त करने के लिये यहाँ बुला लाओ।

कंचुकी—जैसी आपकी आज्ञा हो। आश्रमवासी तपस्वियो ! आप लोग सुनें ! यह मगधराजनंदिनी श्रद्धा और विश्वास के साथ धर्म के लिये अर्थ के द्वारा आप लोगों को निमंत्रित करती हैं—

बनबासी सुनौ घट चाहिये काहि,
तथा पट पैन्हिवो चाहत को है।
धन चाहिये काहि, दिये दछिना बिनु,
आयो चलो गुरु गह सों जो है ॥
बसुधाधिप की यह प्यारी सुता,
तपसीनि मनोरथ पूरती तो है।
अब जो कछु जा कहँ चाहिये सो,
यहि के ढिग आय न जांचत क्यों है ॥८॥

यौगन्धरायण—उपाय तो समझ में आ गया। (प्रकाश) अजी ! मुझे कुछ चाहिये।

पद्मावती—अहा मेरा तपोवन का आना सार्थक हो गया।

तापसी—इस आश्रम पद के सारे तपस्वी सन्तुष्ट हैं। यह कोई आगन्तुक होगा।

कंचुकी—कहिये, आप क्या चाहते हैं ?

यौगन्धरायण—यह मेरी सहोदरा है। इसका पति बाहर चला गया है। मैं चाहता हूँ कि कुछ समय तक राजनन्दिनी इसका परिपाल न करें। क्योंकि—

नहिं भोग सों जोग कछू हमको,
पट औ धन को न कछू अभिलाख।
यह त्यौं परिव्राजक को वर वेष,
नहीं जग वंचन के हित राखें।
बसुधाधिप की सुता धर्म प्रिया,
यह जानि हिये हमहूँ कछु भाखें।

भगिनीपति जौं लगि आवै नहीं,
तब लौं यहि को अपने ढिग राखैं ॥९॥

वासवदत्ता—(स्वगत) अरे आर्य यौगन्धरायण मुझे यहीं छोड़ जायँगे ? अच्छा, यह तो बिना सोचे विचारे कोई काम करते ही नहीं।

कंचुकी—इनकी याचना तो बड़ी बिचित्र है। क्या करें क्योंकि-

सुलभ अर्थ तप प्रान कौ, या जग में है दान।
पर थाती को राखिबो, है पै कठिन महान ॥१०॥

पद्मावती—आर्य ! पहले यथेष्ट दान की घोषणा करके अब किसी प्रकार का संकल्प विकल्प करना अनुचित है, अब जैसा यह कहते हैं वैसा ही करो।

कंचुकी—यह तो आपने अपने अनुरूप ही कहा।

चेटी—ऐसी सत्यवादिनी राजनन्दिनी की जय हो।

तापसी—कल्याणी ! आप दीर्घायु हों।

कंचुकी—बहुत अच्छा (पास जाकर) परिव्राजक ! राजनन्दिनी ने आपकी सहोदरा का संरक्षण स्वीकार कर लिया है।

यौगन्धरायण—राजकुमारी ने बड़ी कृपा की। (वासवदत्ता से) वत्स ! राजकुमारी के साथ जाओ।

वासवदत्ता—(स्वगत) क्या किया जाय, यह मन्दभाग्य जाती है।

पद्मावती—अच्छा, अब तो यह अपनी ही हो गई।

तापसी—इसकी आकृति बड़ी मनोहर है, मेरा अनुमान है ? यह भी कोई राजकुमारी है।

चेटी—आपका कथन यथार्थ है। मैं भी यही अनुमान करती हूँ, इसने भी सुख के दिन देखे हैं।

यौगन्धरायण—(स्वगत) मेरा आधा भार तो कम ही हो गया, अमात्यों ने जैसी मंत्रणा की थी वैसा ही हुआ भी। महाराज के अधिकारारूढ़ होने पर यही मगधराज पुत्री पद्मावती वासवदत्ता को महाराज की सेवा में पहुँचाते समय साक्षिणी बनेंगी। क्योंकि—

या पद्मावती भूपति को,
बनिता बनि कै अति ह्वै है पियारी।

केतिक जोतिष जाननहार,
कहीं, जिन देखी विपत्ति अगारी।
बैननि मैं तिनके बिसवास कै,
कारज को क्रम यौं निरधारी।
जो कछु सोधि बतावत वै,
चतुरानन हू न सकै तेहि टारी ॥११॥

(ब्रह्मचारी का प्रवेश)

ब्रह्मचारी—(ऊपर देखकर) मध्याह्न हो गया, थक भी बहुत गया हूँ। कहाँ विश्राम करूँ? (घूमकर) अच्छा, यह तो चारों ओर तपोवन ही है। क्योंकि—

बिसवास कै झुंड कुरंगनि कै,
जहँ पै विहरैं सबै संक बिहाय कै।
फल भारन सौं नये पादप त्यौं,
तपसीनि की देत दया दरसाय कै।
नहिं भूमि कहूँ लखात जुती,
की पलानि के वृन्द चरैं चहुँ धाय कै।
निहचै ही तपोबन है यह तौ,
लखौ! धूम कढ़ै बहु मार्ग बनाय कै ॥१२॥

तो अब मैं इसी आश्रम में प्रवेश करता हूँ (प्रवेश करके) अरे, यह मनुष्य तो आश्रम के बाहर का प्रतीत होता है (दूसरी ओर देखकर) अथवा तपस्वी भी तो यहाँ हैं। तब तो जाने में कोई दोष नहीं। अरे, स्त्रियाँ भी तो हैं।

कंचुकी—आप स्वतंत्रतापूर्वक यहाँ चले आइये। आश्रम तो सब के लिये होता ही है।

वासबदत्ता—अरे!

पद्मावती—क्या आप परपुरुष तो नहीं देखतीं। जैसा भी हो अब तो मुझे अपनी थाती की रक्षा ही करना होगी।

कंचुकी—हम लोग पहले ही से आ गये हैं। आइये, हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिये।

ब्रह्मचारी—(आचमन करके) अच्छा! अब तो मेरा अध्वखेद भी दूर हो गया!

यौगन्धरायण—आप कहाँ से आये हैं, कहाँ जायँगे, और आपका निवासस्थान कहाँ है ?

ब्रह्मचारी—सुनिये ! मैं राजगृह से आ रहा हूँ । वेद पढ़ने के लिये वत्स देश के लावाणक ग्राम में रहता था ।

वासवदत्ता—(स्वगत) अरे, लावाणक ! लावाणक का नाम सुनते ही मेरा संताप नया हो जाता है ।

यौगन्धरायण—आपने विद्याध्ययन समाप्त तो कर लिया न ?

ब्रह्मचारी—नहीं अभी तो नहीं ।

यौगन्धरायण—तो फिर बिना पढ़ाई समाप्त किये हुये लौटने का क्या कारण है ?

ब्रह्मचारी—वहाँ तो बड़ी ही दारुण दुर्घटना हो गई ।

यौगन्धरायण—सो कैसे ?

ब्रह्मचारी—वहाँ उदयन नाम के राजा रहते थे ।

यौगन्धरायण—हाँ महाराजा उदयन का नाम सुना है, क्या वही वो नहीं ?

ब्रह्मचारी—उज्जयिनी नरेश की कन्या वासवदत्ता उसकी परम प्रिय स्त्री थी ।

यौगन्धरायण—होगी, फिर क्या ।

ब्रह्मचारी—तो जब महाराज आखेट के लिये निकल गये, तो वहाँ आग लग गई जिसमें रानी जल गई ।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह तो बिलकुल झूठ है । यह मंदभाग्या तो अब भी जीवित है ।

यौगन्धरायण—तो फिर ।

ब्रह्मचारी—तो उसको बचाने की चेष्टा में अमात्य यौगन्धरायण भी उस अग्नि में जा पड़ा ।

यौगन्धरायण—अच्छा, मंत्री भी आग में जा पड़ा । तो फिर

ब्रह्मचारी—मृगया से लौटकर जब महाराज ने सारा वृत्तान्त सुना तब तो वह रानी और मंत्री के वियोग जनित-संताप से मर्माहत होकर स्वयं प्राण परित्याग करने के लिये तैयार हो गये, पर मंत्रियों ने बड़े यत्न से उन्हें निवारण किया ।

बासदत्ता—(स्वगत) आर्य्य पुत्र का प्रेम और सहानुभूति जानती हूँ।

यौगन्धरायण—तो फिर ?

ब्रह्मचारी—तब तो उनके शरीर के दग्धावशेष आभूषणों को अपने हृदय से लगाकर राजा मूर्छित हो गये।

सब लोग—हाय, हाय।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह तो आर्य्य यौगन्धरायण की इच्छा के अनुकूल ही हुआ।

चेटी—राजनन्दिनी! यह तो रोने लगीं।

पद्मावती—तब तो यह बड़ी ही दयार्द्र हृदया होगीं।

यौगन्धरायण—हाँ, हाँ, स्वभाव ही से मेरी सहोदरा बड़ी दयालु है। फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—फिर धीरे धीरे राजा सचेत हुये।

पद्मावती—कुशल हुई! महाराज को संज्ञाहीन सुनकर मेरा भी हृदय शून्य हो गया था।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तो फिर पृथ्वी पर लोटने के कारण धूसरित गात्र महाराज उदयन सहसा उठ पड़े और हा वासवदत्ता! हा मगधराज-पुत्री! हा प्यारी! हा प्रिय शिष्ये! इस प्रकार कह कर दारुण विलाप करने लगे। अधिक क्या कहें—

जेती उदैन विथानि सही,
चकवा चकई को उतो दुख नाहीं।
कौन कथा पुनि औरनि की,
बनिता को बियोग दहै जिन काहीं।
सांचहु धन्य है सोई तिया,
पिय साचो करै जिहि यौं मन माहीं।
नाह के नेह नहीं वह बाम,
सदा चिरजीवी मरै कबौं नाहीं ॥१३॥

यौगन्धरायण—तो फिर किसी मंत्री ने महाराज को समझाने बुझाने का भी प्रयत्न नहीं किया ?

ब्रह्मचारी—हां, रुमरवान नामधेय मंत्री ने महाराज को समझाने बुझाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया। वह तो—

त्यागि अहार भयो दुबरो,
घने आंखिन सों अंसुवा बरसाय कै।
सूखि गयौ मुख मंडल त्यौं,
तन-भूषन-वेष सबै बिसराय कै।
भाँतिन भाँतिन सों निसि द्यौस,
नरेसहिं सेवत सो मनलाय कै।
भूपति जो पै तजै कहूँ प्रान,
अमात्यहिं राखि सकै को बचाय कै ॥१४॥

वासवदत्ता—(स्वगत) सौभाग्यवश आर्य्य पुत्र की रक्षा का भार योग्य आदमी के हाथ पड़ा।

यौगन्धरायण—(स्वगत) रुमरवान के ऊपर बड़ा भारी उत्तर दायित्व है। क्योंकि—

हरुवो भो मम श्रम कछू, तासु भार अति पीन।
है नृप को अवलम्ब जो, सब वाके आधीन ॥१५॥

(प्रकट) अब तो महाराज का शोकावेग बहुत कुछ कम हो गया।

ब्रह्मचारी—और नहीं जानता। मंत्री लोग राजा को बड़े यत्न से उस ग्राम से लेकर चले, राजा बार बार यही कहकर विलाप करते जाते थे, कि यहाँ मैं अवन्ति राजपुत्री के साथ हँसा था, यहाँ उसके साथ मैंने वार्तालाप किया था, यहाँ हम दोनों रहे थे, यहाँ हम दोनों का प्रणयकलह हुआ था, यहाँ पर हम लोगों ने निद्रा ली थी। राजा के चले जाने पर वह ग्राम वैसा ही शून्य मालूम होने लगा जैसे चन्द्रमा और नक्षत्रावली से विहीन आकाश मंडल। बस फिर मैं भी चला आया।

तापसी—तब तो राजा वास्तव में बड़े ही गुणवान होंगे। क्योंकि आगन्तुक भी तो उनकी प्रशंसा करते हैं।

चेटी—राजनन्दिनी! तो फिर क्या वह पुनर्विवाह भी करेंगे?

पद्मावती—(स्वगत) यही तो मैं भी विचार रही हूँ।

ब्रह्मचारी—अब मैं जाने के लिये आपसे बिदा माँगता हूँ।

दोनों—जाइये, आपका कार्य सिद्ध हो।

ब्रह्मचारी—अच्छा, जाता हूँ। (प्रस्थान)

यौगन्धरायण—अच्छा, अब मैं भी तो राजनन्दिनी की आज्ञा से जाना चाहता हूँ।

कंचुकी—राजनन्दिनी! आपकी आज्ञा से यह भी जाना चाहते हैं।

पद्मावती—आर्य्य की सहोदरा आपके बिना अत्यन्त उत्कंठित होगी।

यौगन्धरायण—आप ऐसे सज्जनों के साथ रहकर उत्कंठित न होगी। (कंचुकी को देखकर) अच्छा, जाता हूँ।

कंचुकी—अच्छा जाइये। परन्तु फिर दर्शन दीजियेगा।

यौगन्धरायण—अवश्य। (प्रस्थान)

कंचुकी—अब विश्राम का समय आगया।

पद्मावती—आर्य्ये! आपको अभिवादन करती हूँ।

तापसी—पुत्री! अपने योग्य ही वर प्राप्त करो।

वासवदत्ता—आर्य्ये! मैं भी प्रणाम करती हूँ।

तापसी—आप भी शीघ्र ही अपने पति को प्राप्त करें।

वासवदत्ता—अनुगृहीत हुई।

कंचुकी—राजनन्दिनी! इधर आइये, इधर आइये। अब तो—

चले नभचर नीड़ दिसि मुनिवृन्द सरनि अन्हातु।
लग्यो घुमरन धूम अरु प्रज्वलित भयो कृसानु।
कछुक नीचे आय अरु निज किरनि जाल संभारि,
जात अस्ताचलहिं लै निज रथहिं आपु तमारि ॥१६॥

(सब का प्रस्थान)

[प्रथम अङ्क समाप्त]

द्वितीय अंक

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—अरी कुंजरिके ! कुंजरिके ! राजनन्दिनी पद्मावली
है। क्या कहती हो, राजनन्दिनी माधवीलता मंडप के पास
क्रीड़ा कर रही हैं। तब तक मैं उन्हीं के पास जाती हूँ (घूमकर
देखकर) अहा, गेंद खेलती हुई राजकुमारी तो यहीं आ रही हैं,
मुख मंडल पर श्रमसीकर झलक रहे हैं, तो अब मैं इन्हीं के
जाती हूँ।

(प्रस्थान)

(कन्दुक क्रीड़ावसक्त पद्मावती का वासवदत्ता एवं
सखियों के साथ प्रवेश)

वासवदत्ता—यह अपना गेंद लो, सखी !

पद्मावती—आर्य्ये ! बस हो चुका।

वासवदत्ता—सखी ! बहुत देर तक कन्दुक क्रीड़ा
तुम्हारे हाथ इतने लाल हो गये हैं कि मालूम होता है कि
और के हों।

चेटी—राजनन्दिनी ! खेलिये, खेलिये। तब तक और
से खेलिये जब तक कि तुम्हारा यह मनोज्ञ कन्या भाव बना रहे

पद्मावती—आर्य्ये ! क्यों मेरा परिहास कर रही हो ?

वासवदत्ता—नहीं, नहीं सखी ! आज तो आप अत्यन्त
दर्शना मालूम होती हैं। मुझे तो आज चारो ही ओर आप
सुन्दर बदन दिखलाई पड़ता है।

पद्मावती रहने भी दो, मेरा अधिक परिहास न करो।

वासवदत्ता—अच्छा, महाराज महासेन की भावी पुत्र
चुप रहूँगी।

पद्मावती—यह महासेन कौन हैं ?

वासवदत्ता—वही उज्जयनी के महाराज प्रद्योत जिनके
सैन्यबल के कारण इनका नाम महासेन पड़ गया है ?

चेटी—उनके साथ तो राजनन्दिनी सम्बन्ध करना नहीं

बासवदत्ता—तो फिर किसके साथ विवाह करना चाहती हैं।

चेटी—वत्सदेश में उदयन नाम के कोई राजा हैं, उन्हीं के गुणों पर राजनन्दिनी मुग्ध हैं।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह तो मेरे प्राणनाथ आर्य्य पुत्र के साथ विवाह करना चाहती हैं (प्रकट) किस कारण से।

चेटी—इसलिये कि वे बड़े दयालु हैं।

वासवदत्ता—(स्वगत) जान गई, जान गई। इसे भी उनके लिये उन्माद सा रो रहा है।

चेटी—राजनन्दिनी ! यदि महाराज रमणीय दर्शन न हों तो ?

वासवदत्ता—नहीं, नहीं, महाराज बड़े सुन्दर हैं।

पद्मावती—आर्य्ये ! आप यह बात कैसे जानती हैं ?

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्य्य पुत्र में पक्षपात होने के कारण मैं न जाने क्या कह गई, अब क्या करूँ (प्रकट) सखी ! उज्जयनी निबासी ऐसा ही कहते हैं।

पद्मावती—उचित भी है। उज्जयिनी के रहने वालों के लिये तो वह दुर्लभ नहीं हैं। सौन्दर्य्य सब को समान भाव से आकर्षित करता है।

(धात्री का प्रवेश)

धात्री—राजनन्दिनी की जय हो। आपका तो वाग्दान कर दिया गया।

बासवदत्ता—आर्य्ये ! किसके साथ ?

धात्री—वत्सराज उदयन के साथ ?

वासवदत्ता—महाराज सकुशल तो हैं ?

धात्री—हाँ, सकुशल हैं और आये भी हैं। और उन्होंने राजकुमारी का पाणिग्रहण स्वीकार भी कर लिया है।

वासवदत्ता—यह तो अत्यहित हुआ।

धात्री—अत्याहित का कौन सा प्रसंग है ?

वासवदत्ता—कुछ भी नहीं। पहले तो उनके लिये इतना संताप किया परन्तु अब इस प्रकार उदासीन हो गये !

धात्री—आर्य्ये ! महापुरुषों के हृदयों पर शास्त्रोक्त उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ता हैं, और उन्हें सद्यःसान्त्वना भी मिल जाती है।

वासवदत्ता—क्या महाराज ने स्वयं अपनी ओर से विवाह का प्रस्ताव किया था ?

धात्री—नहीं, नहीं, वह तो यहाँ किसी अन्य प्रयोजन से आये थे, परन्तु हमारे महाराज ने विद्या, यौवन, सौन्दर्य्य और विशाल कुल देखकर स्वयम् अपनी ओर से विवाह का प्रस्ताव किया।

वासवदत्ता—(स्वगत) तब तो फिर आर्य पुत्र का कोई अपराध नहीं है।

(दूसरी का प्रवेश)

चेटी—आर्य्ये ! जल्दी कीजिये, जल्दी कीजिये, अभी शुभ नक्षत्र है महारानी ने आज्ञा दी है कि कङ्कण आज ही बाँधा जायगा।

धात्री राजनन्दिनी ! आइये, आइये।

(सब का प्रस्थान)

[द्वितीय अंक समाप्त]

तृतीय अंक

(विचार मग्ना वासदत्ता का प्रवेश)

वासवदत्ता—विवाह आमोद संकुलित अन्तःपुर के प्राङ्गण में पद्मावती को छोड़कर मैं यहाँ प्रमदवन में आयी हूँ। इसलिये कि यहाँ आकर मैं अपने दुर्भाग्य जनित दुखों को दूर करूँगी। (घूमकर) यह तो बड़ी अनहोनी हो गई। आर्य पुत्र भी पराये हो गये (बैठकर) अच्छा, मैं भी बैठती हूँ। वह चक्रवाक वधू धन्य है जो अपने स्वामी से चिरवियुक्त होकर प्राण परित्याग कर देती है परन्तु मुझे मृत्यु भी नहीं आती। आर्य्य पुत्र के दर्शनों की अभिलाषा से यह मन्दभाग्या अब तक प्राण धारण किये हुये है।

(फूल लिये हुए चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्य्या अवन्तिका कहाँ चली गईं (घूमकर और देखकर) अरे ! यह तो चिन्ता मग्न एवम् शून्य हृदय के समान प्रियंगु लता के शिला पट पर समासीन हैं। इनका आभरण शून्यवेष ऐसा मालूम होता है। कि मानो तुषार-मंडित मृगांक मूर्ति ही हो। अच्छा तो अब मैं उनके पास जाती हूँ। (पास जाकर) आर्य्ये ! अवन्तिके ! मैं कितनी देर से तुम्हें ढूँढ़ रही हूँ।

वासवदत्ता—क्या काम है ?

चेटी—महारानी ने कहा है कि आप विशालकुल सम्भवा स्नेहवती एवम् अत्यन्त निपुण हैं, इसलिये आप ही इस कौतुक माला को गूँथ दें।

वासवदत्ता—किसके लिये गूँथूँ ?

चेटी—हमारी राजनन्दिनी के लिये।

वासवदत्ता—(स्वगत) अरे, यह भी मुझे करना पड़ेगा। आह, दैव बड़ा निर्दई है।

चेटी—आर्य्ये ! इस समय आपका ध्यान और किसी ओर न जाय, जामाता महोदय मणिभूमि मंदिर में स्नान कर रहे हैं, इसलिये आप इसे शीघ्र ही गूँथ दें।

वासवदत्ता—(स्वगत) अरे, मैं और कुछ नहीं सोचूंगी (प्रकट) सखी ! क्या आपने जामाता को देखा।

चेटी—हाँ, राजनन्दिनी के स्नेह से और अपने कौतूहल से उन्हें अवश्य देखा।

वासवदत्ता—जामाता महोदय कैसे हैं ?

चेटी—क्या कहूँ ऐसा रूप तो मैंने पहले कभी देखा ही नहीं।

वासवदत्ता—अरी सखी ! बतला तो क्या वे बड़े ही सुन्दर हैं।

चेटी—वे तो धनुष बाण रहित साक्षात महाराज मन्मथ ही हैं।

वासवदत्ता—अच्छा, होंगे।

चेटी—रोकती क्यों हो ?

वासवदत्ता—पर पुरुष के सम्बन्ध में वार्तालाप सुनना भी अनुचित है।

चेटी—तो आप शीघ्र ही माला गूँथ दें।

वासवदत्ता—ले आओ गूँथती हूँ।

चेटी—लीजिये।

वासवदत्ता—(देखकर और रोककर) इस औषधि का क्या नाम है।

चेटी—इसका नाम सदा सोहागिन है।

वासवदत्ता—(स्वगत) तब तो इसे अपने लिये और पद्मावती के लिये भी अधिक परिमाण में गूथ दूँ। (प्रकट) इस औषधि का क्या नाम है।

चेटी—इसका नाम है सपत्नी विमर्दिनी।

वासवदत्ता—इसे न गूथना चाहिये।

चेटी—क्यों ?

वासवदत्ता—उनकी पूर्व पत्नी का परलोक वास हो गया, अतः इसका गूँथना व्यर्थ है।

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

चेची—आर्य्ये ! शीघ्रता कीजिये, शीघ्रता कीजिये, इस समय सौभाग्य बती प्रमदायें जामाता को अन्तःपुर की चतुंशाला में लिये जा रही हैं।

वासवदत्ता—अरी ! लो यह तैयार है ।

चेटी—यह तो बड़ी सुन्दर बनी । आर्य्ये ! अब मैं जाती हूँ ।

(दोनों का प्रस्थान)

वासवदत्ता—अब तो यह चली गई, बड़ी ही अनहोनी हुई । आर्य्यपुत्र भी अब अपने न रहे, चलकर शय्या पर यदि निद्रा आ जाय तो विश्राम करके ही दुख दूर करूँ ।

(प्रस्थान)

[तृतीय अङ्क समाप्त]

चतुर्थ अंक

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(सहर्ष) सौभाग्यवश मैंने वत्सराज महाराज के पाणिग्रहण संस्कार सम्बन्धी रमणीय महोत्सवों को देखा। कौन सोच सकता था कि हम लोग इस अनर्थ जल के आवर्त में पड़कर फिर निकल सकेंगे ? अब तो आनन्द से राज प्रसादों में निवास होता है, अवरोध गृह की वापिकाओं में स्नान होता है, स्वभाव ही से मधुर एवं कोमल लड्डुओं का भोग लगता है, और अप्सरारहित स्वर्ग सुखों का अनुभव यहीं किया जाता है; केवल दोष इतना ही है कि भोजन भली भाँति पचता नहीं, सुंदर सुकोमल शय्या पर भी निद्रा नहीं आती, ऐसा मालूम होता है कि मानों वातरक्त का प्रकोप हो रहा है। ऐसा सुख भी किस काम का ?

(चेटी का प्रवेश।)

चेटी—आर्य वसन्तक कहाँ गये ? (घूमकर और देखकर) अरे वसन्तक तो यहीं हैं (पास जाकर) आर्य ! वसन्तक ! कितनी देर से तुम्हें ढूंढ़ रही हूँ ।

विदूषक—(देखकर) कल्याणी ! किस लिये मुझे ढूँढ़ती हो ।

चेटी—हमारी महारानी पूँछती हैं कि जामाता ने स्नान किया या नहीं ?

विदूषक—महारानी ऐसा क्यों पूँछती हैं ?

चेटी—इसलिये कि मैं पुष्प, चन्दन, एवं अंगरागादिक ले आऊँ।

विदूषक—हाँ, महाराज स्नान कर चुके। जो कुछ आप चाहें सो ले आयें। पर भोजन न लाइयेगा।

चेटी—भोजन के लिये आप क्यों निषेध करते हैं ?

विदूषक—कोकिला के अक्षि परिवर्तन के समान मुझ मंदभाग्य को कुक्षि परिवर्तन हो रहा है।

चेटी—ऐसे ही बने रहो।

विदूषक—अच्छा आप जाँय, मैं भी महाराज के पास जाता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

प्रवेशक

(सखियों के साथ पद्मावती एवं अवन्तिक वेष धारिणी वासवदत्ता का प्रवेश)

चेटी—राजनन्दिनी प्रमदवन में क्यों आई हैं ?

पद्मावती—सखी ! यही देखने आई थीं कि शेफालिका अभी विकसित हुई या नहीं।

चेटी—राजनन्दिनी ! वह तो विकसित हो चुकी और प्रवाल ग्रथित मौक्तिकमाला के समान फूलों से सुशोभित हो रही है।

पद्मावती—सखि ! यदि ऐसा ही है तो फिर विलम्ब क्यों करती हो ?

चेटी—तो राजनन्दिनी थोड़ी देर तक इस शिलापट पर बैठ जायँ, जब तक कि मैं पुष्प संचय कर लूँ।

पद्मावती—आर्य्ये ! अच्छा हम दोनों यहीं बैठती हैं।

वासवदत्ता—ऐसा ही सही।

(दोनों बैठती हैं)

चेटी—(सुमन संचय करके) शेफालिका सुमनों से परिपूर्ण होने के कारण मेरी यह अंजली मन्सल की वट्टी के समान प्रतीत होती है।

पद्मावती—(देखकर) आर्य्या भी इधर देखें, फूलों की रमणीयता एवम् विचित्रता अपूर्व ही है।

वासवदत्ता—वास्तव में फूलों की दर्शनीयता का क्या कहना है।

चेटी—राजनन्दिनी ! क्या और भी फूल चुन लाऊँ ?

पद्मावती—सखी ! नहीं, नहीं। अब आवश्यकता नहीं।

वासवदत्ता—सखी ! क्यों सुमन संचय के लिये निषेध करती हो ?

पद्मावती—इसलिये कि जब आर्य्यपुत्र यहाँ आकर अभूत-कुसुम राशि को देखें तो मुझे सम्मानित करें।

वासवदत्ता—सखी ! प्राणनाथ तुम्हें बड़े प्रिय लगते हैं ना।

पद्मावती—आर्य्ये ! यह तो नहीं जानती पर उनसे वियुक्त हो कर उत्कंठित हो जाया करती हूँ।

वासवदत्ता—(स्वगत) यह भी ऐसा ही कहती है। मैं बड़ी ही दुर्भाग्यता का सामना कर रही हूँ।

चेटी—राजकुमारी ने अपने पति प्रेम की व्यंजना बड़े ही अच्छे ढंग से की।

पद्मावती—मुझे एक बात का सन्देह है।

वासवदत्ता—क्या, क्या ?

पद्मावती—जैसे आर्य्यपुत्र मुझे प्रिय हैं क्या आर्य्या वासवदत्ता को भी इतने ही प्रिय थे ?

वासवदत्ता—इससे भी बढ़कर प्रिय थे।

पद्मावती—तुमने कैसे जाना ?

वासवदत्ता—(स्वगत) आर्य्यपुत्र में अधिक पक्षपात बुद्धि होने के कारण मैं न जाने क्या कह गई, तो अब यों कहूँ। (प्रकट) जिसे थोड़ा भी स्नेह होता है वह आत्मीयजनों का परित्याग नहीं करतीं।

पद्मावती—ऐसा ही होगा।

चेटी—राजनन्दिनी ! महाराज से कहना मुझे भी वीणावादन सिखा दो।

पद्मावती—कहा तो था मैंने महाराज से।

वासवदत्ता—तो उन्होंने क्या उत्तर दिया ?

पद्मावती—कहा तो कुछ भी नहीं, परन्तु एक दीर्घ निश्वास लेकर मौनावलम्बन कर लिया।

वासवदत्ता—इसका आप क्या अर्थ लगाती हैं ?

पद्मावती—मेरा तो यह अनुमान है कि आर्य्या वासवदत्ता के गुणों का स्मरण करके दाक्षिण्य के कारण वे मेरे सामने रोये नहीं।

वासवदत्ता—(स्वगत) यदि यह सत्य है तो मैं धन्य हूँ।

(राजा और विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—ही ही ही ही ! बन्धुजीव के फूल तोड़ते समय इधर उधर पृथ्वी पर विकीर्ण हो गये हैं, इससे प्रमदवन आज बड़ा ही रमणीय मालूम होता है, इधर से आइये महाराज ! इधर से।

राजा—मित्र वसन्तक ! लो आ गया।

भूप महासेन जू कौ साहसिक सेना पाल,
बाँधि मोहिं जबहिं अवन्तिका कौ लै गयौ।

देखत ही राजनन्दिनी को मम हीय हाय,
पंचबान बान कौ निसानों तहँ ह्वै गयौ।
सालत करेजे में आजौ हूँ वाकी चोट बांकी,
फेरि कोऊ मनहु नयो ही घाव छ्वै गयौ।
आजु लौं कहावत मदन हुतो पंचसर,
छठयें विसिष से प्रहार कैसे कै गयौ॥ १॥

विदूषक—राजनन्दिनी पद्मावती कहाँ गईं, संभव है कि वे लतामंडप में गई होंगी, या असन-प्रसूनों से अच्छादित व्याघ्र चर्म के समान अवगुंठित-पर्वत तिलक नाम शिलापट पर बैठी होगी, या तीव्र गन्धि वाले सप्तच्छद वन में गई होंगी, दारु पवत पर होंगीं जहाँ पशु पक्षियों की मूर्तियाँ खोदी गई हैं (ऊपर देखकर) तब तक महाराज शरतकाल के कारण निर्मल आकाश में इस सारस पंक्ति को आते हुये देखें, जो वलभद्र जी की प्रलम्व बाहु के समान दर्शनीय प्रतीत होती है।

राजा—मित्र! इसे देखता हूँ।
आयत हू रिजु औ बिरली,
घटा सारस की अति लागति नीकी।
त्यौहीं निबर्तन मांहि खरी,
सप्तर्षिहु की वा प्रभा करै फीकी।
या नत उन्नत ह्वै कै उड़ै,
मनौ सीमा विभाजन अम्बर ही की।
धारत धौल छटानि रहै,
निकसी जो भुजंगम की किचुली की॥ २॥

चेटी—राजनन्दिनी! कोकनदमाला के समान पांडुर एवम् रमणीय उड़ते हुए इस सारस समूह को तो देखिये। अरे महाराज भी हैं।

पद्मावती—अच्छा आर्य्यपुत्र भी यहीं हैं (वासवदत्ता से) आर्ये! तुम्हारे लिये मैं इस समय आर्य्यपुत्र का दर्शन भी परित्याग किये देती हूँ। आओ इस माधवीलता मंडप में ही चली चलें।

वासवदत्ता—अच्छा ऐसा ही सही।

(सब का माधवीलता मंडप में प्रवेश)

विदूषक—मालूम तो यही होता है कि यहाँ पर राजनन्दिनी पद्मावती आईं और चली भी गईं।

राजा—यह आपने कैसे जाना ?

विदूषक—महाराज ! आप इन शेफालिका गुल्मों को तो देखें जिनसे फूल चुन लिये गये हैं।

राजा—अरे वसन्तक ! फूलों की विचित्रता भी कैसी रमणीय है।

वासवदत्ता—(स्वगत) वसन्तक का नाम सुनकर मुझे ऐसा मालूम होता है कि मानो मैं फिर उज्जयिनी में आ गई।

राजा—वसन्तक ! तब तक इसी शिलापट पर बैठकर हम लोग पद्मावती की प्रतीक्षा करें।

वसन्तक—अच्छा, ऐसा ही सही (बैठकर और फिर उठकर) हा, हा, शरतकाल का आतप तो और भी तीक्ष्ण एवम् असह्य है, इसलिये आइये चलकर इसी माधवीलता मंडप में ही बैठें।

राजा—अच्छा, अग्रसर हो।

विदूषक—जैसा आप कहें।

(दोनों का घूमना)

पद्मावती—सब को तंग करना ही आर्य्य वसन्तक का काम है अब हम लोग क्या करें।

चेटी—राजनन्दिनी ! इसी मधुकर-आच्छादित अवलम्बलता को हिलाकर स्वामी को रोक दूँगी।

पद्मावती—ऐसा ही करना।

(चेटी वैसा ही करती है।)

विदूषक—अरे महाराज। ठहरिये, ठहरिये।

राजा—क्यों, क्यों ?

विदूषक—दासी पुत्र मधुकर तो मेरे ऊपर टूट ही पड़े।

राजा—अरे मित्र ! कहीं इन मधुकरों से भिड़ जाना। देखो—

मदमाती मलिन्दनि की अवली,
मधुरी धुनि गूँजति है हरखाई।
अब मैन की तापनि ताई तियाहिं,
पिया अपने हिय सों लपिटाई।

। धीरेहुँ धारे धरा पै सखा,

तिनके रस रंग में भंग ह्वै जाई।

न लोगनि सों तिन्हैं बाल वियोग,

हहा जनि घेरै कहूँ इत आई ॥ ३ ॥

ये आओ यहीं बैठें।

क—ऐसा ही सही।

(दोनों बैठते हैं)

—(देखकर)

न दलित सुमनावली, सिला तलहु गरमाय।

हचै कोउ बैठी इतै, मोहि लखि गई पराय ॥ ४ ॥

—राजनन्दिनी ! हम तो यहाँ घिर गईं।

वती—अच्छा, आर्य्यपुत्र भी तो यहीं बैठे हैं।

दत्ता—(स्वगत) भाग्यवश आर्य्यपुत्र सकुशल हैं।

—राजनन्दिनी ! आर्य्या के नेत्रों में तो आँसू भर आये।

दत्ता—इन मधुकरों के उपद्रव के कारण मेरे नेत्रों में

मकरन्द पड़ गया है जिससे आँसू बहने लगे हैं।

वती—ठीक ही है।

क—महाराज ! इस समय प्रमदवन में कोई नहीं है, मुझे

ाप पूछनी है।

—स्वच्छन्दता पूर्वक पूछो।

क—आपको उस समय महारानी वासवदत्ता अधिक प्रिय

मय महारानी पद्मावती प्रिय हैं।

—आप क्यों इस समय मुझे महा संकट में डालते हैं।

वती—सखी ! आर्य्य पुत्र इस समय बड़े संकट में पड़

दत्ता—(स्वगत) मैं बड़ी ही मन्दभाग्या हूँ।

क—आप स्पष्ट कहें। एक तो मर चुकी है और दूसरी भी

-मित्र ! मैं यह नहीं बतलाऊँगा, आप बड़े ही वाचाल हैं।

वती—इतना तो आर्य्य पुत्र ने कह ही डाला।

विदूषक—सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि मैं किसी से भी न कहूँगा, लो अपनी जीभ काटता हूँ।

राजा—मित्र ! कहने का साहस नहीं होता।

पद्मावती—अरे इसकी बुद्धि तो देखिये कि यह हृदय की इतनी भी परीक्षा नहीं कर सकता।

विदूषक—आप मुझे न बतलायेंगे। तो आप बतलाये बिना इस शिलापट से एक डग भी आगे नहीं जा सकते, देखिये आप यहीं रोके गये हैं।

राजा—क्या मुझे बरबस रोके रक्खोगे।

विदूषक—हाँ, बरबस रोकूंगा।

राजा—अच्छा देखता हूँ।

विदूषक—आप प्रसन्न हों। आपको मेरी मैत्री की शपथ कि यदि आप सत्य न कहें।

राजा—क्या कहा जाय सुनिये—

माधुरता गुन सील मैं, पद्मावती ललाम।
पै प्रदोत-तनया बंध्यो, मन नहिं लहत विराम ॥४॥

वासवदत्ता—(स्वगत) धन्य ! मुझे अपने परिश्रम का फल मिल गया। अहा अज्ञातवास में भी बहुत से गुण होते हैं।

चेटी—तब तो अवश्य ही आपके प्राणनाथ बड़े ही अनुदार हैं।

पद्मावती—अरी सखी ! ऐसा नहीं। आर्य्य पुत्र उदार हैं, देखो ना वे आर्य्या वासवदत्ता के गुणों को अब भी स्मरण करते हैं।

वासवदत्ता—कल्याणी ! आपने वही बात कही जो कुलवधू को कहना चाहिये।

राजा—मैंने तो कह दिया, अब तुम बतलाओ कि तुम्हें उस समय महारानी वासवदत्ता अधिक प्रिय थीं या इस समय पद्मावती अधिक प्रिय हैं ?

पद्मावती—आर्य्य पुत्र भी बसन्तक हो गये।

विदूषक—मेरे कहने से क्या, दोनों ही रानियाँ मेरे लिये बड़ी हैं।

राजा—अरे मूर्ख ! मुझसे तो हठ करके पूछ लिया पर आप नहीं बतलाते।

विदूषक—क्या मुझसे भी आप हठ करके ही पूछेंगे ?

राजा—अवश्य हठ करके ही पूछूंगा।

विदूषक—अब तो आप कुछ न सुन सकेंगे।

राजा—अरे महाब्राह्मण ! प्रसन्न हो, प्रसन्न हो। अपनी इच्छानुसार ही कहो।

विदूषक—तो आप सुनें। महारानी वासवदत्ता मुझे बहुत प्रिय थीं। रानी पद्मावती भी नवयौवना, रमणीयदर्शना, अकोपना, मधुर भाषणी, उदार एवं निरहंकार हैं। सब से बड़ी विशेषता तो यह है कि महारानी वासवदत्ता मधुर एवं स्निध भोजन लेकर मुझे पूछा करती थीं कि आर्य्य वसन्तक कहाँ हैं ?

वासवदत्ता—अच्छा, अच्छा ! वसन्तक ! अब तुम उन्हीं की याद करो।

राजा—अच्छा वसन्तक ! यह सब बातें मैं वासवदत्ता से कहूँगा।

विदूषक—अरे वासवदत्ता कहाँ है ! वासवदत्ता को मरे हुये तो बहुत दिन हो गये।

राजा—(सविषाद) अवश्य, रानी वासवदत्ता तो मर गई।

मो मन यौं व्याकुल करत, करि ऐसो परिहास।
बरबस मुख बानी कढ़ी, कछु पूरब अभ्यास ॥५॥

पद्मावती—इस निःशृंस ने ऐसे रमणीय कथा प्रसंग में विघ्न डाला।

बासवदत्ता—(स्वगत) अच्छा, अब तो हमें विश्वास हो गया यदि इस प्रसंग को गुप्त रूप से सुनूँ तो बड़ा आनन्द आवे।

विदूषक—महाराज ! धैर्य धारण कीजिये, विधि के विधान पर किसी का बस नहीं चलता।

राजा—मित्र ! आप वास्तविक बात को नहीं जानते। क्योंकि

भुलावन काज प्रदोत-सुतहिं,
किये पद्मावती सों हम व्याह।
तऊ सुमिरे तेहि के गुन-ग्राम,
न सोक के सिंधु की लागति थाह।

यहै अब लोक की है मरजाद,
बहाय कै लोचन बारि प्रवाह।
लहैं यहि भाँति कछू विसराम,
न सान्ति की दूसरी दीसति राह ॥६॥

विदूषक—अश्रुपात के कारण आपका मुख विवर्ण हो गया है अतः मैं मुख धोने के लिये थोड़ा सा पानी ले आऊँ। (प्रस्थान)

पद्मावती—आर्य्ये ! महाराज के मुख पर आँसुओं का परदा पड़ा हुआ है इसलिये आओ इसी समय हम लोग चली चलें।

वासवदत्ता—ऐसा ही सही ! पर नहीं तुम ठहरो, उत्कंठित अवस्था में प्राणनाथ को छोड़ कर चला जाना कदापि उचित नहीं मैं ही जाती हूँ।

चेटी—आर्य्या ठीक ही कहती हैं। राजनन्दिनी स्वयम् महाराज के पास जावें।

पद्मावती—तो क्या अब मैं चली ही जाऊँ ?

वासवदत्ता—हाँ सखी ! आप अवश्य जायें। (ऐसा कहकर

(प्रवेश करके)

विदूषक—(नलिनी पत्र में जल लिये हुये) अरे यह तो महारानी पद्मावती हैं।

पद्मावती—आर्य्य वसन्तक ! यह क्या है ?

विदूषक—यह यही है। यह यही है।

पद्मावती—कहिये आर्य्य ! कहिये।

विदूषक—महारानी ! पवन प्रेरित काश कुसुम मकरन्द के नेत्रों में पड़ जाने से अश्रुपात के कारण महाराज का मुख विवर्ण हो गया था, इसलिये आप यह जल ले लें, जो उनका मुख धोने के लिये लाया हूँ।

पद्मावती—(स्वगत) उदार आदमियों के परिजन भी उदार ही होते हैं (आकर) आर्य्यपुत्र की जय हो, मुख धोने के लिये यह जल लाई हूँ।

राजा—अरी पद्मावती ! (हटाकर) और वसन्तक यह क्या।

विदूषक—(कान में) बात ऐसी है।

राजा—वाह वसन्तक ! वाह (मुँह धोकर) पद्मावती, आइये; बैठिये।

पद्मावती—आर्य्यपुत्र की जो आज्ञा हो (बैठती है)

राजा—पद्मावती !

सरद इन्दु सम गौर, पवन की लहि झकझोरी।
कास कुसुम मकरन्द, पर्‌यो आँखिन मैं मोरी॥
नैन-वारि की धार, उमगि तिनसों बहि आई।
दीनो धोय कपोल वदन छवि छीन लखाई॥७॥

(स्वगत)

यह नव व्याही बाल कथा जो पै सुनि लैहै।
तौ निहचै ही विपुल बिथा वाके हिय ह्वै है॥
होय भले ही धीर कौन जाने या मन को।
पै भाव सों होत हियो कोमल तिय जनको॥८॥

बिदूषक—मध्याह्नोत्तर काल में मगधराज आज आपको लेकर सुहृद जनों से भेंट करेंगे। सत्कार के बदले सत्कार करने ही से प्रेम की वृद्धि होती है। इसलिये आप उठें।

राजा—यह तो हमारा प्रथम कर्त्तव्य ही है (उठकर)

जानत सतगुन अरु करत, नित सतकार अनेक।
पै तिनको गुन पारखी, है जग मैं कोउ एक॥९॥

(सब का प्रस्थान)

[चतुर्थ अंक समाप्त]

पंचम अंक

(पद्मिनिका का प्रवेश)

पद्मिनिका—मधुरिके ! मधुरिके ! जल्दी आओ ।

(आकर)

मधुरिका—लो सखी ! मैं आ गई । क्या करना है ?

पद्मिनिका—सखी ! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि राजनन्दिनी पद्मावती मस्तक पीड़ा से व्यथित हो रही हैं ।

मधुरिका—हाय, हाय ।

पद्मिनिका—जल्दी जाओ और आर्य्या अवन्तिका को भी बुला लाओ; उनसे केवल इतना कहना कि राजनन्दिनी के मस्तक में पीड़ा हो रही है । तब तो वह स्वयम चली आवेंगीं ।

मधुरिका—सखी ! वह क्या कर लेंगी ?

पद्मिनिका—वह सुललित कथाओं को सुना कर राजनन्दिनी का मनोविनोद करेंगी ।

मधुरिका—ठीक है, राजनन्दिनी की शय्या कहाँ बिछाई गई है ?

पद्मिनिका—शय्या समुद्रगृह में बिछाई गई है । अब तुम जाओ, मैं भी महाराज उदयन को सूचना देने के लिये आर्य्य वसन्तक को ढूँढ़ती हूँ ।

मधुरिका—अच्छा ठीक है । (प्रस्थान)

पद्मिनिका—आर्य्य वसन्तक को अब मैं कहाँ देखूँ ।

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—इस अत्यन्त मंगलमय उत्सव के समय देवी वासवदत्ता के वियोग विरह से व्याकुल महाराज वत्सराज के हृदय में पद्मावती के पाणिग्रहण रूपी पवन से प्रेरित कामाग्नि और भी तीव्रतर हो रही है । अरी (पद्मिनिका को देखकर) अरी पद्मिनिके ! पद्मिनिके क्या हो रहा है ?

पद्मिनिका—आर्य्य वसन्तक ! क्या तुम्हें इस बात का पता नहीं कि राजनन्दिनी पद्मावती शिरोवेदना से व्याकुल हो रही हैं ?

विदूषक—क्या यह सच है, मुझे इसका पता नहीं है।

पद्मिनिका—तो जाकर महाराज वत्सराज से बात कह दो, तब तक मैं प्रलेप लाने जा रही हूँ।

विदूषक—पद्मावती की शय्या कहाँ बिछाई गई है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह में बिछी है।

विदूषक—अच्छा आप जायँ और मैं यह समाचार महाराज उदयन को जाकर सुनाता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

प्रवेशक

(राजा का प्रवेश)

राजा—

काल क्रम लहि करत यद्यपि दूसरो यह व्याह।
तदपि भूप प्रदोत-नन्दिनि मैं बँधी मम चाह॥
जारि छार कृसानु कीन्ह्यों जिहि लवानक माहिं।
अजौ हिम-हत-पद्मिनो सम मोहि भूलत नाहिं॥१॥

(प्रवेश करके)

विदूषक—महाराज ! जल्दी कीजिये, जल्दी कीजिये।

राजा—किस लिये ?

विदूषक—महारानी पद्मावती मस्तक पीड़ा से व्यथित हो रही हैं।

राजा—यह बात किसने कही ?

विदूषक—पद्मिनिका कहती थी।

राजा—अरे, बड़ा कष्ट हुआ,

रूप सील सम्पन्न सकल-गुन-गन की खानी।
भयो सोक कछु मन्द पाय पुनि नूतन रानी॥
पै दुर्घटना सुमिरि बहुरि लावानक वारी।
पद्मावती अनिष्ट सोंचि हिय होत दुखारी॥२॥

अच्छा पद्मावती कहाँ हैं ?

विदूषक—उनकी शय्या समुद्र गृह में बिछाई गई है।

राजा—तो वहाँ का मार्ग बतलाओ।

विदूषक—इधर से आइये, इधर से आइये (दोनों घूमते हैं।)

विदूषक—यही समुद्रगृह है, महाराज इसमें पधारें।

राजा—पहले तुम चलो।

विदूषक—अच्छा चलता हूँ। परन्तु अरे महाराज! आप वहीं ठहरें, वहीं ठहरें।

राजा—क्यों?

विदूषक—महाराज! दीपक के प्रकाश में पृथ्वी पर पड़ा हुआ यह भीषण भुजंगम स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है।

राजा—(प्रवेश करके देखकर हँसते हुये) अरे मूर्ख! यही तेरा भीषण भुजंगम है?

भूमि पै लोटत तोरनद्वार की,
आयत चंचल माल निहारी।
हे मतिमन्द तिहारे हिये,
वृथा होत भुजंगम कौ भ्रम भारी।
दीसत और की औरै कछू,
निसि मैं अति छाय रही अंधियारी।
मन्द समीर के झोंकनि सौं,
यह डोलति है मनौ नागिनि कारी॥ ३॥

विदूषक—(देखकर) आप ठीक कहते हैं। यह भुजंगम नहीं है (प्रवेश करके और देखकर) महारानी पद्मावती यहाँ आकर लौट भी गईं।

राजा—सखा! वह अभी यहाँ न आईं होंगी।

विदूषक—आपने यह कैसे जाना?

राजा—इसमें जानने की कौन सी बात है। देखो—

दीसत न एकहू सरौंट कहूँ चादर मैं,
मानहुँ रुचिर सेज अबहीं बिछाई है।
त्यौं ही सीस औषधि-विलेपन कौ दाग कौंह,
स्वच्छ तकिया पै नहिं परत लखाई है।
रोग-व्यथा पीड़ित के मन बहराइबे कौ,
लोचनाभिराम साम नेकु न सजाई है।
ऐसी सुख-सेज पाय कोऊ रोग आरत तौ,
काहू भांति याहि नहिं चलत बिहाई है॥ ४॥

बिदूषक—तो आप ही इस शय्या पर थोड़ी देर के लिये विश्राम करके महारानी पद्मावती की प्रतीक्षा कर लें।

राजा—हाँ अच्छा (बैठकर) मित्र ! मुझे निद्रा बहुत तंग कर रही है इसलिये कोई कथा सुनाओ।

बिदूषक—कथा तो मैं अवश्य सुनाऊँगा, पर आप हुँकारी भरते रहिये।

राजा—हाँ अच्छा।

विदूषक—उज्जयिनी नाम की एक नगरी थी उसमें बड़े सुन्दर एवम् रमणीय स्नानागार थे।

राजा—तुमने फिर उज्जयिनी का प्रसंग चलाया ?

विदूषक—अच्छा यदि यह कथा आपको रुचिकर नहीं है, तो दूसरी और सुनाता हूँ।

राजा—मित्र ! नहीं यह कथा अरुचिकर नहीं है। किन्तु—

यदि है आवति वाही घरी,
जबै राजसुता मम संग सिधारी।
लाज सकोच को दीरघ सोच,
रह्यो तिय के हिय मैं दुखकारी।
त्यौं गुरु लोग-बिछोह बिचारि कै,
आयत आँखिनि मैं भरि वारी।
मेरेई अंक मैं बाल रसालने,
धार खरी अँसुआनि की डारी॥ ५॥

और भी—

वीना वादन रह्यो जबहिं नृप धियहिं सिखावत।
मेरी ही दिसि रही वाम निज दीठि लगावत॥
यदपि गिरी मिजराव, तिया अंगुरी ते भू पर।
रही चलावत हाथ तऊ तारन के ऊपर॥ ६॥

विदूषक—अच्छा दूसरी कथा सुनाता हूँ। ब्रह्मदत्त नाम का एक नगर था। वहाँ काम्पिल्य नाम के एक राजा थे।

राजा—यह क्या, यह क्या ?

बिदूषक—(फिर वही कहता है)।

राजा—मूर्ख ! कहो ब्रह्मदत्त नाम के राजा थे, और काम्पिल्य नाम की नगरी थी।

विदूषक—क्या कहूँ ब्रह्मदत्त राजा और काम्पिल्य नगरी।

राजा—हाँ यही।

विदूषक—तो थोड़ी देर आप ठहर जावें मैं इसे कंठाग्र कर लूँ। राजा ब्रह्मदत्त, काम्पिल्य नगर (इस प्रकार कई बार कहकर) अब आप सुनें। अरे महाराज तो सो गये, इस समय जाड़ा भी लग रहा है, तो मैं अपना ओढ़ना ले आऊँ। (प्रस्थान)

(अवन्तिकावेषिणी वासवदत्ता और चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्य्या ! इधर आयें, इधर आयें। राजनन्दिनी शिरोवेदना से अत्यन्त पीड़ित हो रही हैं।

वासवदत्ता—हा शोक, पद्मावती की शय्या कहाँ बिछाई गई है।

चेटी—शय्या समुद्र गृह में बिछी हुई है।

वासवदत्ता—तो आगे चलो।

(दोनों घूमती हैं)

चेटी—यही समुद्रगृह है, आर्य्या इसमें पधारें; मैं भी तब तक प्रलेप लिये आती हूँ। (प्रस्थान)

वासवदत्ता—ईश्वर मुझ से रुष्ट है। विरह व्यथित आर्य्यपुत्र की विश्वासपात्री यह पद्मावती भी अस्वस्थ हो गई। तो मैं प्रवेश करती हूँ (प्रवेश करके और देखकर) अरे परिजनों का प्रमाद तो देखो ! ये लोग पद्मावती को केवल दीपक के सहारे पर छोड़ गये हैं, और यह पद्मावती तो सो रही हैं, तो मैं भी बैठती हूँ। अथवा दूसरे आसन पर बैठने से स्नेह की अल्पता प्रतीत होगी; इसलिये इसी शय्या पर बैठती हूँ (बैठकर) न जाने क्यों आज इसके साथ बैठते हुये मेरा हृदय प्रसन्न हो रहा है। इनका स्वांस तो बहुत ठीक चल रहा है, इससे प्रतीत होता है कि इनका रोग शान्त हो गया। पर्य्यंक पर एक पार्श्व में लेटकर मानो यह मुझे आलिंगन करने की इच्छा करती है, तो मैं यहीं लेटी जाती हूँ। (शयन का नाट्य करती है)

राजा—(स्वप्न देखते हुये) हाय वासवदत्ता।

वासवदत्ता—सहसा उठकर) अरे यह तो आर्य्यपुत्र हैं, पद्मा-

वती नहीं हैं, इन्होंने मुझे देखा तो नहीं। मुझे देख लेने से आर्य्य यौगन्धरायण का प्रतिज्ञाभार ही व्यर्थ हो गया।

राजा—हाय अवन्ति राज पुत्री !

वासवदत्ता—आर्य्य पुत्र स्वप्न देख रहे हैं यहाँ कोई है भी नहीं; इसलिये थोड़ी देर तक यहीं ठहर कर अपने हृदय और दृष्टि को संतोष तो दे लूँ।

राजा—हाय प्रिये ! हाय प्रिय शिष्ये ! बोलती क्यों नहीं ?

वासवदत्ता—बोलती हूँ, महाराज, बोलती हूँ।

राजा—क्या रुष्ट हो ?

वासवदत्ता—नहीं, नहीं ! दुःखिनी हूँ।

राजा—यदि रुष्ट नहीं हो तो आभूषण क्यों नहीं धारण किये ?

वासवदत्ता—इससे बढ़कर और क्या।

राजा—क्या विरंचिका को स्मरण करती हो ?

वासवदत्ता—(सरोष) अरे हटाओ, यहाँ भी विरंचिका।

राजा—इसी से विरंचिका के लिये मैं आपसे क्षमा मांगता हूँ (दोनों हाथ फैलाते हैं)

वासवदत्ता—मैंने यहाँ बहुत देर लगाई, कोई मुझे देख लेगा। तो अब जाती हूँ। अथवा आर्य्यपुत्र का हाथ पर्य्यंक से नीचे लटक रहा है, इसे ऊपर रख दूं तब जाऊँ। (वैसा करके जाती है)

राज—(सहसा उठकर) वासवदत्ता। ठहरो, ठहरो। शोक।

निकरत खन गृह द्वार सों, गयों सखा टकराय।
कै सौंतुख, कै स्वप्न यह, कछु न सक्यौं ठहराय ॥७॥

(प्रवेश करके)

विदूषक—अरे महाराज तो जग पड़े।

राजा—मित्र ! तुम्हें एक प्रिय सम्वाद सुनाऊँ। वासवदत्ता अभी जीवित है।

विदूषक—हाय वासवदत्ता ! वासवदत्ता अब कहाँ है, उसे मरे मरे तो बहुत दिन हो गये।

राजा—मित्र ! ऐसा न कहो,

सोवत सों मोंहि सेज पै, तिय प्रबोधि गइ भाग।
रुमण्वान व्यर्थहि कहत, ताहि जराई आगि ॥८॥

विदूषक—अरे यह तो असम्भव है। स्नानागारों का वर्णन सुनते सुनते आपका ध्यान वासवदत्ता की ओर बंधा रहा, इसलिये आपने उन्हें स्वप्न में भी देखा।

राजा—ऐसा, मैंने तो स्वप्न ही देखा।

जो पै सांचो स्वप्न यह, धन्य स्वप्न को जाल।
अथवा जो यह होय भ्रम, बनो रहे तिहुँ काल ॥९॥

विदूषक—अरे मित्र ! इस नगरी में अवन्ति सुन्दरी नामक एक यक्षिणी रहती है, उसी को आपने देखा होगा।

राजा—नहीं, नहीं।

जागत ही वाके लखे, लोचन अंजन हीन।
दीर्घ-अलक मुख पालती, पतिव्रत ह्वै दीन ॥१०॥

और भी मित्र ! देखो, देखो।

या भुज को प्रिय वाम ने, दाब्यो सोवत माहिं।
जागेहु पै रोमांच यह, देखहु छोड़त नाहिं ॥११॥

विदूषक—महाराज इस समय व्यर्थ की बातें न सोचें; आइये चतुर्शाला में चलें।

(प्रवेश करके)

कंचुकी—आर्य्यपुत्र की जय हो। हमारे महाराज दर्शक ने आप से कहला भेजा है कि आपके मंत्री रुमण्वान बड़ी भारी सेना लेकर आरुणी को मारने के लिये आ गये हैं, इसलिये मेरे भी हाथी, घोड़े, रथ, और पैदल सभी विजय के लिये तैयार हैं अतः आप उठें। और भी—

फूट परी अरि-वृन्दनि में,
गुन ग्राम पै रीझि रहे पुर वारे।
पाछिली सेन के रच्छन काज,
चुने गये हैं सिगरे रखवारे।
सत्रु विनासन के जे उपाय हैं,
तेऊ विचारि लिये गये सारे।
देव नदी को कियो मिलि पार,
औ वत्स को देस है हाथ हमारे ॥ १२ ॥

राजा—(उठकर) हाँ ठीक है।

बारन बाजिन तरन जोग यहि सिन्धु समर में।
तीखन-बान-तरंग-तुंग उछरत अंतर में।
क्रूर कर्म में निपुन दुष्ट आरुणि कहँ मारौं।
अबहीं होत तयार शत्रु कहँ आय पछारौं॥ १३॥

(सब का प्रस्थान)

[पंचम अंक समाप्त]

छठवाँ अंक

(कंचुकी का प्रवेश)

कंचुकी—अरे ! यहाँ काञ्चन तोरणद्वार पर कौन है ?

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—आर्य्य ! मैं हूँ विजया; कहिये क्या करूँ ?

कंचुकी—वत्सदेश की पुनर्राज्य लाभ से विशेष अभ्युदय सम्पन्न महाराज उदयन से जाकर निवेदन करो कि महाराज महासेन के यहाँ से रैभ्यस्य गोत्र नामी कंचुकी और महारानी अंगारवती की भेजी हुई वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा दोनों ही राजद्वार पर उपस्थित हैं।

प्रतीहारी—आर्य्य ! इसके निवेदन करने का यह अनुकूल अवसर नहीं है।

कंचुकी—अनुकूल क्यों नहीं है ?

प्रतीहारी—आर्य्य ! सुनें। आज स्वामी के पूर्वीय प्रासाद में किसी ने वीणा बजाई, उसको सुनकर महाराज ने कहा कि यह तो घोषवती का शब्द सुनाई पड़ता है।

कंचुकी—तो फिर और क्या हुआ ?

प्रतीहारी—तो फिर महाराज ने वहाँ जाकर उससे पूँछा कि यह वीणा कहाँ से आई। उसने उत्तर दिया कि महाराज हमने इसे नर्बदा नदी के किनारे झाड़ी में पाया है, यदि महाराज का इससे कोई काम हो तो ले लें। उसे अपने अंक में रखकर महाराज संज्ञा हीन हो गये; चेतना लाभ करने पर अश्रुपात करते हुये महाराज ने कहा, घोषवती ! तू तो दिखलाई पड़ी, परन्तु वह तो कहीं नहीं दिखलाई पड़ती। आर्य्य ! अनवसर इस प्रकार का है, कैसे आपका संदेश महाराज की सेवा में निवेदन करूँ।

कंचुकी—अच्छा ! आप अवश्य निवेदन करें क्योंकि यह समाचार उसी घटना से सम्बन्धित है।

प्रतीहारी—अच्छा मैं जाकर निवेदन करती हूँ। यह तो स्वयम् महाराज ही पूर्वीय प्रासाद से उतर रहे हैं। तो यहीं कहे देती हूँ।

कंचुकी—अच्छा कह दो।

(दोनों का प्रस्थान)

[मिश्र विष्कम्भक]

(राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा—

मधुरे सुर श्रौनिन कौं सुखदैन,
न घोषवती अजौं जात भुलाये।
धरि त्योंही उरूनि पै तोहिं प्रिया,
छतिया सो रही मुदमानि लगाये।
तेहि तेरे मनोरम दण्ड को हाय,
विहंगनि ने इहि भाँति बनाये।
कहौ ऐसे भयानक कानन में,
रहि कै इतने दिन कैसे बिताये ॥१॥

और भी। घोषवती! तुम तो बड़ी कठोर हो तुम वासवदत्ता का स्मरण नहीं करतीं।

धरि अंक में तोको महीपसुता,
भरि भायनि सौं जोहती गहिलावत।
कबहूँ थकि कै तव दण्ड कौ टेकि,
रही उपगूहनि कौ रस प्यावत।
तिय मेरे वियोग में जो तुमको,
जिय को बहरावन हेतु बजावत।
तेहि की वहि मन्दहंसी बतियानि की,
घोषवती! कबहूँ सुधि आवत ॥२॥

विदूषक—बस महाराज हो चुका, अब अधिक दुख न करें।

राजा—मित्र! ऐसा न कहो,

बीन लखे सोवत मदन, जाग्यो मो हिय माँहि।
घोषवती जाकी प्रिया, वह दिखाति कहुँ नाहिं ॥३॥

वसन्तक! शिल्पियों के पास जाकर अभी इसे बनवा लाओ।

विदूषक—जैसी आपकी आज्ञा हो। (वीणा को लेकर प्रस्थान)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो महाराज महासेन के यहाँ

से रैम्यस्य गोत्र कंचुकी और महारानी अंगारवती के द्वारा भेजी हुई। वसुन्धरा नामधेया वासवदत्ता की धात्री सेवा में राजद्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—तो पद्मावती को भी बुला लाओ।

प्रतीहारी—महाराज की जैसी आज्ञा हो। (प्रस्थान)

राजा—महाराज महासेन ने यह सारा वृतान्त इतनी शीघ्रता पूर्वक कैसे जान लिया ?

(पद्मावती और प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—आइये, आइये राजनन्दिनी।

पद्मावती—आर्य्यपुत्र की जय हो।

राजा—क्या तुमने सुना कि महाराज महासेन के यहाँ से रैम्यस्य गोत्र कंचुकी और महारानी अंगारवती द्वारा भेजी हुई आर्य्या वसुन्धरा नाम की वासवदत्ता की धात्री राजद्वार पर उपस्थित हैं ?

पद्मावती—मुझे आत्मीयजनों का कुशल वृत्त सुनना बड़ा अच्छा लगता है।

राजा—आपने यह ठीक ही कहा। वासवदत्ता के आत्मीय जन तो अपने ही हैं। पद्मावती ! बैठिये, बैठती क्यों नहीं।

पद्मावती—क्या आप मेरे साथ बैठकर ही उन लोगों से भेंट करेंगे ?

राजा—इसमें दोष ही क्या है।

पद्मावती—आर्य्यपुत्र ने दूसरा विवाह कर लिया है इस विचार से वे खिन्न तो न होंगे ?

राजा—परन्तु जो लोग आप से मिल सकते हैं उनसे न मिलने देना भी तो दोष ही है, इसलिये यहीं बैठो।

पद्मावती—आर्य्य पुत्र की जैसी आज्ञा हो। (बैठकर) मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है कि माता पिता ने क्या कहलाया होगा।

राजा—पद्मावती ! मुझे भी यह चिन्ता है।

मो सों कहा कहि हैं महराज,
यहै गुनि कै रह्यो हीय सकाई।
वाको सुता हरि ल्यायों हुतो,
विधि-वाम सों ताहि सक्यों न बचाई।

वा अपकार की आदि किये,
कछु भीति रही हमरे उर छाई।
ज्यौं दुर्भागि सौं कै अपराध,
पिता ढिग पूत सकै नहिं जाई ॥४॥

पद्मावती—जिसका अन्त आ गया उसकी रक्षा कोई नहीं कर सकता।

प्रतीहारी—महाराज! कंचुकी और धात्री राजद्वार पर उपस्थित हैं।

राजा—तो उन्हें शीघ्र ही यहाँ लाओ।

प्रतीहारी—महाराज! जो आज्ञा हो (प्रस्थान)

(कंचुकी धात्री और प्रतीहारी का प्रवेश)

कंचुकी—अरे!

भूप उदैन की राज मैं आय,
अनन्द भयो हिय मैं अति भारी।
पै गई राज सुता सुर लोक,
यहै सुनि भाव जग्यो दुखकारी।
हे दुरभागि! जु पै अरि वृन्द,
न लेते कहँ हरि राज अगारी।
तौ सब भांतिन सौं कुसली,
रहती वर राजकुमारि हमारी ॥ ५ ॥

प्रतीहारी—महाराज इधर बैठे हैं, यहाँ आओ, यहाँ आओ।

कंचुकी—(जाकर) आर्य्यपुत्र की जय हो।

धात्री—महाराज की जय हो।

राजा—(बड़े आदरपूर्वक) आर्य!

अखिल अवनि महिपालगन, उथपन थापन काज।
हैं सकुशल वै बन्धु-प्रिय महासेन महराज ॥ ६ ॥

कंचुकी—महाराज महासेन कुशल पूर्वक हैं और उन्होंने आप लोगों का कुशल वृत्त पूछा है।

राजा—(आसन से उठकर) महाराज महासेन ने क्या आज्ञा दी है?

कंचुकी—वैदेही पुत्र के अनुरूप ऐसा ही शिष्टाचार है। आसन पर बैठकर ही आप महासेन का संदेश सुनें।

राजा—महाराज महासेन की जैसी आज्ञा हो (बैठते हैं)।

कंचुकी—हर्ष की बात तो यह है कि शत्रुओं के द्वारा अपहृत राज्य को आपने पुनः प्राप्त किया। क्योंकि—

कायर अरु बलहीन कहूँ, होत न साहस जोग।
बहुधा बसुधा को करत, धीर बीर उपयोग॥ ७॥

राजा—आर्य्य! यह सब महाराज महासेन ही का प्रभाव है। क्योंकि—

पहिले रन मोहिं हराय कै आपने,
पुत्रन ही सम लाड़ लड़ायो।
नृप की दुहिताहिं हरी हठ कै,
मरिबे सों हहा तेहि पै न बचायो।
अरु तासु विनास की क्रूर कथाहिं,
सुन्यो तऊ नेह को बन्ध दृढ़ायो।
नर नायक ही की कृपा सों बहोरि,
विजय करि आपनो राजहिं पायो॥ ८॥

कंचुकी—यही महाराज महासेन का संदेश है। महारानी अंगारवती का संदेश यह बसुन्धरा देवी कहेंगी।

राजा—हा अम्ब!

सोरह रानिन मैं बड़ी, पुर देवता प्रवीन।
मम प्रवास सों दुखित हिय, हैं माता कुसलीन॥ ९॥

धात्री—महारानी सर्वथा स्वस्थ हैं, और उन्होंने आप लोगों का कुशल मंगल पूछा है।

राजा—सब कुशल है। माता! कुशल का यह हाल है।

धात्री—महाराज अधिक संतप्त न हों।

कंचुकी—महाराज धैर्य्य धारण करें। जिस महासेन की पुत्री पर आप की ऐसी अनुकम्पा है, वह मृत होकर भी जीवित ही है। अथवा—

अंत आयो जासु ताको सकत कौन बचाय।
टूटि गौ गुन कुम्भ रच्छन कौ न कोऊ उपाय।

मनुज अरु वन तरुन, कौ है एक ही सों न्याय।
पाय रितु गुन बढ़त अरु, रितु अवगुनहिं बिनसाय ॥१०॥

राजा—आर्य्य! ऐसा न कहो।

महासेन दुहिता प्रिया, सिष्या गुन समुदाय।
जन्मान्तर हू माहि तेहि, कैसे सकत भुलाय ॥१२॥

धात्री—महारानी ने कहा है कि अब वासवदत्ता नहीं है, मुझे और महासेन महाराज को जैसे गोपालक और पालक प्रिय हैं वैसे ही पूर्व निर्वाचित जामाता आप भी प्रिय हैं, और इसीलिये आप उज्जयनी लाये भी गये थे। अग्नि को साक्षी किये बिना ही वीणा शिक्षण के व्याज से वासवदत्ता आपके हाथ सौंप दी गई थी, परन्तु बाल चपलता वश पाणिग्रहण संस्कार के बिना ही आप उसे लेकर चले गये, तब हमने आपका और वासवदत्ता का चित्र बनवाकर विवाह करा दिया। यही चित्र आपके पास भेजा जाता है, इसे देखकर शान्ति लाभ कीजिये।

राजा—अहो! ये प्रेम एवम् कृपा से परिपूर्ण बातें उन्हीं के योग्य है।

सत राज्यनि के लाभ सौं, अधिक प्रीति यहि माहिं।
कृत अपराधहिं रानि जौ, अब लौं भूली नाहिं ॥१२॥

पद्मावती—आर्य्यपुत्र! मैं चित्र लिखित गुरुजन को देखकर अभिवादन करना चाहती हूँ।

धात्री—देखिये! देखिये! राजनन्दिनी। (चित्रपट दिखलाती है)।

पद्मावती—(देखकर, स्वगत) यह तो आर्य्या अवन्तिका की आकृति से बहुत कुछ मिलती जुलती है (प्रकट) आर्य्यपुत्र! क्या आर्य्या वासवदत्ता ऐसी ही थीं।

राजा—ऐसी ही नहीं बिल्कुल यही है। हा बड़े दुख की बात है।

कैसे यहि वर बरन पै, परी विपत्ति कराल।
या मुख मधुराई कहौं, जारि सक्यो किमि ज्वाल ॥१३॥

पद्मावती—आर्य्यपुत्र का चित्र देखकर उसके सादृश्य से मैं जान लूँगी कि आर्य्या वासवदत्ता का भी चित्र ठीक है या नहीं।

धात्री—राजनन्दिनी ! देखें, देखें।

पद्मावती—(देखकर) आर्य्यपुत्र के चित्र से महाराज का सादृश्य देखकर यही अनुमान होता है कि आर्य्या वासवदत्ता भी ऐसी ही होंगी।

राजा—देवी ! जब से आपने चित्र देखा है तब से आप कुछ प्रसन्न और उद्विग्न भी मालूम देतीं हैं इसका क्या कारण है।

पद्मावती—आर्य्यपुत्र ! इसी आकृति की एक स्त्री तो यहीं है।

राजा—वासवदत्ता के आकृति की।

पद्मावती—हाँ।

राजा—तो उसे शीघ्र ही लाओ।

पद्मावती—आर्य्यपुत्र ! जब मैं कुंवारी थी तो एक ब्राह्मण मेरे पास अपनी भगिनी को धरोहर के रूप में रख गया था, उसका पति परदेश गया है इसलिये वह पर पुरुष को देखती भी नहीं। उसे आप मेरे साथ देखकर जान लेंगे।

राजा—

जो यह द्विज भगिनी, अवसि वह ह्वै है कोउ आन।
केते जन या जगत में, दीसत अन्य समान ॥१४॥

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—स्वामी की जय हो। उज्जयिनी से एक ब्राह्मण आया है। वह कहता है कि महारानी के पास मैं अपनी सहोदरा को धरोहर के रूप में रख गया था। अब वह उसे लेने के लिये राजद्वार पर उपस्थित हुआ है।

राजा—पद्मावती ! क्या यही ब्राह्मण है।

पद्मावती—होगा।

राजा—उस ब्राह्मण को बड़े आदर के साथ यहाँ बुला लाओ।

प्रतीहारी—महाराज ! जैसी आज्ञा हो। (प्रस्थान)

राजा—पद्मावती ! तुम भी उसे बुला लाओ।

पद्मावती—आर्य्यपुत्र की जैसी आज्ञा हो। (प्रस्थान)

(यौगन्धरायण और प्रतीहारी का प्रवेश)

यौगन्धरायण—अरे (स्वगत)

महीपति कौ हित साधन काज,
प्रदोत सुता हम राखी दुराय।
सुभागिहि के अनुकूल भये,
बनि आये किये हम जेते उपाय॥
तऊ जिय होत सकोच खरो,
औन साहस होत सकौं समुहाय।
कहा करिहैं महि बोलि महीप,
रह्यो यह सोचि हियो घबराय॥१५॥

प्रतीहारी—महाराज यहाँ हैं, आर्य्य इधर आवें।

यौगन्धरायण—(जाकर) महाराज की जय हो, जय हो।

राजा—यह तो पूर्व परिचित स्वर प्रतीत होता है। हे ब्राह्मण! क्या तुम अपनी सहोदरा को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में सौंप गये थे?

यौगन्धरायण—हाँ महाराज।

राजा—तो इनकी सहोदरा को शीघ्र ही बुला लाओ।

प्रतीहारी—महाराज की जैसी आज्ञा। (प्रस्थान)

(पद्मावती, अवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश)

पद्मावती—आर्य्ये! इधर आइये, इधर आइये। आपको एक अत्यन्त प्रिय समाचार सुनाऊँ।

अवन्तिका—कहिये क्या है? क्या है?

पद्मावती—आपके भ्राता लौट आये।

अवन्तिका—सौभाग्यवश वह अब तक मुझे भूले नहीं।

पद्मवाती—(आकर) आर्य्यपुत्र की जय हो। महाराज यही धरोहर है।

राजा—पद्मावती! इसे लौटा दो। परन्तु धरोहर साक्षियों के समक्ष लौटानी चाहिये। यहाँ पर आर्य्य रैभ्य और आर्य्या बसुन्धरा इस कार्य्य को सम्पन्न करेंगे।

पद्मावती—आर्य्य! अब आर्य्या को ले जाओ।

धात्री—(अबन्तिका को देखकर) अरे यही तो राजनन्दिनी वासवदत्ता है।

राजा—अरे महासेन की पुत्री ! देवी ! तुम पद्मावती के साथ अन्त:पुर में जाओ।

यौगन्धरायण—नहीं, नहीं महाराज ! इसे अन्त:पुर में न भेजिये। यह तो मेरी भगिनी है।

राजा—आप क्या कहते हैं। यह तो महासेन की कन्या है।

यौगन्धरायण—

हे राजन !

भरतवंस अवंतस तुम, ज्ञानी सुचि सुविनीत।
ताहि रोकि बरबस करत, राज धरम विपरीत ॥१६॥

राजा—अच्छा मैं रूप सादृश्य तो देख लूँ। थोड़ा सा अवगुंठन हटा दो।

यौगन्धरायण—महाराज की जय हो।

वासवदत्ता—आर्य्यपुत्र की जय हो।

राजा—अरे यह तो यौगन्धरायण हैं और यह महासेन की पुत्री है।

कै सौंतुख कै स्वप्न यह, मों कह परत लखाय।
पहिले हूँ देखी हुती, तौ हूँ गयो ठगाय ॥१७॥

यौगन्धरायण—महाराज ! महारानी को छिपाकर मैंने अवश्य ही अपराध किया, इसके लिये महराज मुझे क्षमा करें (चरणों पर गिरता है)

राजा—(उठाकर) आप ही यौगन्धरायण हैं ?

करि मिथ्या उन्माद रन, सास्त्रन विहित उपाय।
दुख सागर बूड़त हमैं, लीन्हो आप बचाय ॥१८॥

यौगन्धरायण—हम लोग तो महाराज के भाग्य के अनुयायी हैं।

पद्मावती—अरे यही तो आर्य्या वासवदत्ता हैं। आर्य्ये बिना जाने हुये ही आपके साथ सखी-सुलभ व्योहार किया, इसी पादावनत होकर आप से क्षमा की याचना करती हूँ।

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाकर) उठो सौभाग्यवती ! अरे मैं स्वयम् क्षमा की पात्र हूँ।

पद्मावती—मैं अनुगृहीत हुई।

राजा—मित्र यौगन्धरायण ! महारानी को छिपा रखने में आपका क्या उद्देश्य था ?

यौगन्धरायण—कौशाम्बी का परित्राण मात्र ।

राजा—पर इन्हें पद्मावती के पास धरोहर के रूप में छोड़ जाने का भी तो कोई कारण होना चाहिये ?

यौगन्धरायण—पुष्पकभद्रादि ज्योतिर्विदों ने पहले ही से कह रक्खा था कि यही राजनन्दिनी पद्मावती आपकी पटरानी होगी ।

राजा—रुमण्वान को भी इसका पता था ?

यौगन्धरायण—महाराज ! सभी जानते थे ।

मुद्रक—ला पब्लिशिङ्ग हाउस, एम० एल० सरकन्या, इलाहाबाद ।